Issue - 17
Vol. - 17 (April-June, 2017)

ISSN - 2322-0171

ICRJIFR,
IMPACT FACTOR
8.2856

UGC APPROVED

Peer Reviewed & Referred
International Research Journal of
Higher Education
Quarterly Bilingual

A FREE LANCE

An official publication of
Amit Educational and Social
Welfare Society (Regd.)
Firozabad (U.P.)

Editor-In-Chief
Dr. Amit Jain
M.Com, Ph.D, MSW, LLB

Scanned by CamScanner

ISSN - 2322-0171

"संयुक्त एवं एकल परिवार के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की समायोजन क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन"

डॉ. आभा सिंह
सहायक आचार्या, शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान
लाडनूँ (राज.)

परिवार का स्वरूप भिन्न–भिन्न प्रकार का होता है जिसमें हमने एकल परिवार या संयुक्त परिवार को मुख्य माना है।

परिवार का शिक्षा में भी अपना विशेष योगदान है। परिवार बालक की प्रथम पाठशाला है। भारतीय परिवारों में सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का बालकों के व्यक्तित्व, शिक्षा, भावनाओं तथा शिक्षा उपलब्धियों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता हैं।

बालक का वर्तमान परिवेश उसका भविष्य तय करता है। एक बीज में फल–फूल पत्तियों तथा अन्य बीजों को उत्पन्न करने की क्षमता एवं संभावना निहित होती है। परन्तु यह तभी साकार होगा जब उसे पानी, गर्मी खाद, हवा उपयुक्त मात्रा में और ठीक समय पर मिलती रहें। इसी प्रकार बालक में निहित विकास की संभावनाओं का विकास भी तभी हो पाता है जब वांछनीय एवं उपयुक्त वातावरण की परिस्थितियां उपलब्ध हों। अन्तर्निहित शक्तियां तब तक जागृत एवं विकसित नहीं होगी जब तक की वातावरण की परिस्थितियों के माध्यम से इन्हें उत्तेजित एवं क्रियारत नहीं किया जाता। वातावरण ही बालक की अन्तर्निहित शक्तियों को विकसित रूप प्रदान करता है। परन्तु कोई भी ऐसा विकास वातावरण के माध्यम से भी संभव नहीं होता जो बालक के मूल स्वभाव में निहित न हो। इस प्रकार ये दो तत्व आंतरिक एवं बाह्य (आनुवांशिकता एवं वातावरण) के कारण बच्चे में आत्मविश्वास का संचार होता है जिसके कारण वह अपना प्रत्येक कार्य उत्साहपूर्वक करने का प्रयास करता है। अपनी रूचि के कार्य करने से पढ़ाई के कारण होने वाली नीरसता कम हो पाती है जिससे वह दुश्चिंता, कुण्ठाओं और हीन भावनाओं से ग्रस्त होने से बचता है।

समस्या का औचित्य :

जीवन के प्रथम वर्ष में बालक पूर्णरूप से अपने माता–पिता एवं समाज के दूसरे सदस्यों पर निर्भर रहता है। किशोर बनते बनते उसकी शारीरिक, मानसिक एवं सांवेगिक क्षमताएं पूर्ण विकसित हो जाती है। उसे कल्पना लोक एवं यथार्थ की दूनिया का काफी ज्ञान हो जाता है। यह ज्ञान उसे अपने माता–पिता एवं सामाजिक बन्धनों से मुक्ति के लिए प्रेरित करता है। वह स्वतन्त्र होना चाहता है। उसकी इस प्रवृत्ति को कुछ मनोवैज्ञानिक "मनोवैज्ञानिक जागृति" कहते हैं। जिसका अर्थ है कि बालक स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता है व अपने निर्णय स्वयं लेना चाहता है। भविष्य की योजना तथा अपने जीवन को स्वयं संवारना चाहता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उसे अभिभावकों एवं अध्यापकों के सहयोग की आवश्यकता नहीं है। बल्कि प्यार, स्नेह, सहानुभूति आदि सांवेगिक सन्तुष्टि का एकमात्र आधार उसके लिए यह ही है। किशोर समझने लगता है कि वे सांसारिक दायित्वों के निर्वहन में सक्षम हो गये है तथा इन्हें प्रौढ़ों की तरह सम्मान दिया जाये, लेकिन समाज की नजरों में ये अभी परिपक्व ही है। यह स्थिति उसे एक द्वन्द्व में धकेल देती है। फलतः किशोर को, कहीं बालक का तो कहीं प्रौढ़ का अभिनय करना पड़ता है।

Scanned by CamScanner